श्रीमद् भागवत का यह सार
भगवद् भक्ति ही आधार

श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

कपिल गीता पञ्चम अध्याय(3.25)

वर्णन करने सांख्य योग का, और देने को ज्ञान ।
गुरु रूप में कपिल मुनि थे, देवहूति शिष्य समान।

नारायणं(न्) नमस्कृत्य, नरं(ञ्) चैव नरोत्तमम्।
देवीं(म्) सरस्वतीं(वँ) व्यासं(न्), ततो जयमुदीरयेत्

नामसङ्कीर्तनं(यँ) यस्य, सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्, तं(न्) नमामि हरिं(म्) परम्

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्
तृतीयः स्कंधः
॥ पञ्चविं(म्)शोऽध्यायः॥

शौनक उवाच

कपिलस्तत्त्वसङ्ख्याता, भगवानात्ममायया ।
जातः(स्) स्वयमजः(स्) साक्षा-दात्मप्रज्ञप्तये नृणाम् ॥ 1॥

शौनकजीने पूछा- सूतजी ! तत्त्वोंकी संख्या करनेवाले भगवान् कपिल साक्षात् अजन्मा नारायण होकर भी लोगोंको आत्मज्ञानका उपदेश करनेके लिये अपनी मायासे उत्पन्न हुए थे ।

न ह्यस्य वर्ष्मणः(फ्) पुं(म्)सां(वँ), वरिम्णः(स्) सर्वयोगिनाम् ।
विश्रुतौ श्रुतदेवस्य, भूरि तृप्यन्ति मेऽसवः ॥ 2॥

मैंने भगवान्‌के बहुत-से चरित्र सुने हैं, तथापि इन योगिप्रवर पुरुषश्रेष्ठ कपिलजीकी कीर्तिको सुनते-सुनते मेरी इन्द्रियाँ तृप्त नहीं होतीं ।

यद्यद्विधत्ते भगवान्, स्वच्छन्दात्माऽऽत्ममायया ।

तानि मे श्रद्दधानस्य, कीर्तन्यान्यनुकीर्तय ॥ 3॥

सर्वथा स्वतन्त्र श्रीहरि अपनी योगमायाद्वारा भक्तोंकी इच्छाके अनुसार शरीर धारण करके जो-जो लीलाएँ करते हैं, वे सभी कीर्तन करनेयोग्य हैं; अतः आप मुझे वे सभी सुनाइये, मुझे उन्हें सुननेमें बड़ी श्रद्धा है ।

सूत उवाच

द्वैपायनसखस्त्वेवं(म्), मैत्रेयो भगवां(म्)स्तथा ।

प्राहेदं(वँ) विदुरं(म्) प्रीत, आन्वीक्षिक्यां(म्) प्रचोदितः ॥ 4॥

सूतजी कहते हैं—मुने! आपकी ही भाँति जब विदुरने भी यह आत्मज्ञानविषयक प्रश्न किया, तो श्रीव्यासजीके सखा भगवान् मैत्रेयजी प्रसन्न होकर इस प्रकार कहने लगे ।

मैत्रेय उवाच

पितरि प्रस्थितेऽरण्यं(म्), मातुः(फ्) प्रियचिकीर्षया ।

तस्मिन् बिन्दुसरेऽवात्सीद्-भगवान् कपिलः(ख्) किल ॥ 5॥

श्रीमैत्रेयजीने कहा- विदुरजी ! पिताके वनमें चले जानेपर भगवान् कपिलजी माताका प्रिय करनेकी इच्छासे उस बिन्दुसर तीर्थमें रहने लगे ।

तमासीनमकर्माणं(न्), तत्त्वमार्गाग्रदर्शनम् ।

स्वसुतं(न्) देवहूत्याह, धातुः(स्) सं(म्)स्मरती वचः ॥ 6॥

एक दिन तत्त्वसमूहके पारदर्शी भगवान् कपिल कर्मकलापसे विरत हो आसनपर विराजमान थे। उस समय ब्रह्माजीके वचनोंका स्मरण करके देवहूतिने उनसे कहा ।

देवहूतिरुवाच

निर्विण्णा नितरां(म्) भूमन्-नसदिन्द्रियतर्षणात् ।

येन सम्भाव्यमानेन, प्रपन्नान्धं(न्) तमः(फ्) प्रभो ॥ 7॥

देवहूति बोली- भूमन्! प्रभो! इन दुष्ट इन्द्रियोंकी विषय- लालसा में बहुत ऊब गयी हूँ और इनकी इच्छा पूरी करते रहने से ही घोर अज्ञानान्धकारमें पड़ी हुई हूँ ।

तस्य त्वं(न्) तमसोऽन्धस्य, दुष्पारस्याद्य पारगम् ।

सच्चक्षुर्जन्मनामन्ते, लब्धं(म्) मे त्वदनुग्रहात् ॥ 8॥

अब आपकी कृपासे मेरी जन्मपरम्परा समाप्त हो चुकी है, इसीसे इस दुस्तर अज्ञानान्धकारसे पार लगानेके लिये सुन्दर नेत्ररूप आप प्राप्त हुए हैं ।

य आद्यो भगवान् पुं(म्)सा-मीश्वरो वै भवान् किल ।
लोकस्य तमसान्धस्य, चक्षुः(स्) सूर्य इवोदितः ॥ 9॥

आप सम्पूर्ण जीवोंके स्वामी भगवान् आदिपुरुष हैं तथा अज्ञानान्धकारसे अन्धे पुरुषोंके लिये नेत्रस्वरूप सूर्यकी भाँति उदित हुए हैं ।

अथ मे देव सम्मोह-मपाक्रष्टुं(न्) त्वमर्हसि ।
योऽवग्रहोऽहं(म्)ममेतीत्-येतस्मिन् योजितस्त्वया ॥ 10॥

देव ! इन देह-गेह आदिमें जो मैं मेरेपनका दुराग्रह होता है, वह भी आपका ही कराया हुआ है, अतः अब आप मेरे इस महामोहको दूर कीजिये ।

तं(न्) त्वा गताहं(म्) शरणं(म्) शरण्यं(म्),
स्वभृत्यसं(म्)सारतरोः(ख्) कुठारम् ।
जिज्ञासयाहं(म्) प्रकृतेः(फ्) पूरुषस्य,
नमामि सद्धर्मविदां(वँ) वरिष्ठम् ॥ 11॥

आप अपने भक्तोंके संसाररूप वृक्षके लिये कुठारके समान हैं; मैं प्रकृति और पुरुषका ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छासे आप शरणागतवत्सलकी शरणमें आयी हूँ। आप भागवतधर्म जाननेवालोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं, मैं आपको प्रणाम करती हूँ ।

मैत्रेय उवाच

इति स्वमातुर्निरवद्यमीप्सितं(न्),
निशम्य पुं(म्)सामपवर्गवर्धनम् ।
धियाभिनन्द्यात्मवतां(म्) सतां(ङ्) गतिर्-
बभाष ईषत्स्मितशोभिताननः ॥ 12॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं— इस प्रकार माता देवहूतिने अपनी जो अभिलाषा प्रकट की, वह परम पवित्र और लोगोंका मोक्षमार्गमें अनुराग उत्पन्न करनेवाली थी, उसे सुनकरआत्मज्ञ सत्पुरुषों की गति श्रीकपिलजी उसकी मन ही मन प्रशंसा करने लगे और फिर मृदु मुसकानसे सुशोभित मुखारविन्दसे इस प्रकार कहने लगे ।

श्रीभगवानुवाच

योग आध्यात्मिकः(फ्) पुं(म्)सां(म्) मतो निः(श्)श्रेयसाय मे ।

अत्यन्तोपरतिर्यत्र दुःखस्य च सुखस्य च ॥ 13॥

भगवान् कपिलने कहा-माता! यह मेरा निश्चय है कि अध्यात्मयोग ही मनुष्योंके आत्यन्तिक कल्याण का मुख्य साधन है, जहाँ दुःख और सुखकी सर्वथा निवृत्ति हो जाती है ।

तमिमं(न्) ते प्रवक्ष्यामि, यमवोचं(म्) पुरानघे ।

ऋषीणां(म्) श्रोतुकामानां(यँ), योगं(म्) सर्वाङ्गनैपुणम् ॥ 14॥

साध्वि ! सब अङ्गोसे सम्पन्न उस योगका मैंने पहले नारदादि ऋषियोंके सामने, उनकी सुननेकी इच्छा होनेपर, वर्णन किया था। वही अब मैं आपको सुनाता हूँ ।

चेतः(ख्) खल्वस्य बन्धाय, मुक्तये चात्मनो मतम् ।

गुणेषु सक्तं(म्) बन्धाय, रतं(वँ) वा पुं(म्)सि मुक्तये ॥ 15॥

इस जीवके बन्धन और मोक्षका कारण मन ही माना गया है। विषयोंमें आसक्त होनेपर वह बन्धनका हेतु होता है और परमात्मामें अनुरक्त होनेपर वही मोक्षका कारण बन जाता है ।

अहं(म्)ममाभिमानोत्थैः(ख्), कामलोभादिभिर्मलैः ।

वीतं(यँ) यदा मनः(श्) शुद्ध-मदुःखमसुखं(म्) समम् ॥ 16॥

जिस समय यह मन मैं और मेरेपन के कारण होनेवाले काम-लोभ आदि विकारोंसे मुक्त एवं शुद्ध हो जाता है, उस समय वह सुख-दुःखसे छूटकर सम अवस्थामें आ जाता है ।

तदा पुरुष आत्मानं(ङ्), केवलं(म्) प्रकृतेः(फ्) परम् ।

निरन्तरं(म्) स्वयं(ञ्)ज्योति-रणिमानमखण्डितम् ॥ 17॥

ज्ञानवैराग्ययुक्तेन, भक्तियुक्तेन चात्मना ।

परिपश्यत्युदासीनं(म्), प्रकृतिं(ञ्) च हतौजसम् ॥ 18॥

तब जीव अपने ज्ञान-वैराग्य और भक्तिसे युक्त हृदयसे आत्माको प्रकृतिसे परे, एकमात्र (अद्वितीय), भेदरहित, स्वयंप्रकाश, सूक्ष्म, अखण्ड और उदासीन (सुख-दुःखशून्य) देखता है तथा प्रकृति को शक्तिहीन अनुभव करता है ।

न युज्यमानया भक्त्या, भगवत्यखिलात्मनि ।

सदृशोऽस्ति शिवः(फ्) पन्था, योगिनां(म्) ब्रह्मसिद्धये ॥ 19॥

योगियोंके लिये भगवत्प्राप्तिके निमित्त सर्वात्मा श्रीहरिके प्रति की हुई भक्तिके समान और कोई मङ्गलमय मार्ग नहीं है ।

प्रसङ्गमजरं(म्) पाश-मात्मनः(ख्) कवयो विदुः ।

स एव साधुषु कृतो, मोक्षद्वारमपावृतम् ॥ 20॥

विवेकीजन सङ्ग या आसक्तिको ही आत्माका अच्छेद्य बन्धन मानते हैं, किन्तु वही सङ्ग या आसक्ति जब संतों-महापुरुषोंके प्रति हो जाती है, तो मोक्षका खुला द्वार बन जाती है ।

तितिक्षवः(ख्) कारुणिकाः(स्), सुहृदः(स्) सर्वदेहिनाम् ।
अजातशत्रवः(श्) शान्ताः(स्), साधवः(स) साधुभूषणाः ॥ 21॥
मय्यनन्येन भावेन, भक्तिं(ङ्) कुर्वन्ति ये दृढाम् ।
मत्कृते त्यक्तकर्माणस्-त्यक्तस्वजनबान्धवाः ॥ 22॥
मदाश्रयाः(ख्) कथामृष्टाः(श्), शृण्वन्ति कथयन्ति च ।
तपन्ति विविधास्तापा, नैतान्मद्गतचेतसः ॥ 23॥

जो लोग सहनशील, दयालु, समस्त देहधारियोंके अकारण हितू, किसीके प्रति भी शत्रुभाव न रखनेवाले, शान्त, सरलस्वभाव और सत्पुरुषोंका सम्मान करनेवाले होते हैं, जो मुझमें अनन्यभावसे सुदृढ़ प्रेम करते हैं, मेरे लिये सम्पूर्ण कर्म तथा अपने सगे-सम्बन्धियोंको भी त्याग देते हैं, और मेरे परायण रहकर मेरी पवित्र कथाओंका श्रवण, कीर्तन करते हैं तथा मुझमें ही चित्त लगाये रहते हैं-उन भक्तोको संसारके तरह-तरहके ताप कोई कष्ट नहीं पहुँचाते हैं ।

त एते साधवः(स्) साध्वि, सर्वसङ्गविवर्जिताः ।
सङ्गस्तेष्वथ ते प्रार्थ्यः(स्), सङ्गदोषहरा हि ते ॥ 24॥

साध्वि ! ऐसे-ऐसे सर्वसङ्गपरित्यागी महापुरुष ही साधु होते हैं, तुम्हें उन्हींके सङ्गकी इच्छा करनी चाहिये; क्योंकि वे आसक्तिसे उत्पन्न सभी दोषोंको हर लेनेवाले हैं ।

सतां(म्) प्रसङ्गान्मम वीर्यसं(वँ)विदो
भवन्ति हृत्कर्णरसायनाः(ख्) कथाः ।
तज्जोषणादाश्वपवर्गवर्त्मनि
श्रद्धा रतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति ॥ 25॥

सत्पुरुषोंके समागमसे मेरे पराक्रमोंका यथार्थ ज्ञान करानेवाली तथा हृदय और कानों को प्रिय लगनेवाली कथाएँ होती हैं। उनका सेवन करनेसे शीघ्र ही मोक्षमार्गमें श्रद्धा, प्रेम और भक्तिका क्रमशः विकास होगा ।

भक्त्या पुमाञ् जातविराग ऐन्द्रियाद् -
दृष्टश्रुतान् मद्रचनानुचिन्तया ।
चित्तस्य यत्तो ग्रहणे योगयुक्तो
यतिष्यते ऋजुभिर्योगमार्गैः ॥ 26॥

फिर मेरी सृष्टि आदि लीलाओंका चिन्तन करनेसे प्राप्त हुई भक्तिके द्वारा लौकिक एवं पारलौकिक सुखोंमें वैराग्य हो जानेपर मनुष्य सावधानतापूर्वक योगके भक्तिप्रधान सरल उपायोंसे समाहित होकर मनोनिग्रहके लिये यत्न करेगा ।

असेवयायं(म्) प्रकृतेर्गुणानां(ञ्),

ज्ञानेन वैराग्यविजृम्भितेन ।

योगेन मय्यर्पितया च भक्त्या

मां(म्) प्रत्यगात्मानमिहावरुन्धे ॥ 27॥

इस प्रकार प्रकृतिके गुणोंसे उत्पन्न हुए शब्दादि विषयोंका त्याग करनेसे, वैराग्ययुक्त ज्ञानसे, योगसे और मेरे प्रति की हुई सुदृढ़ भक्तिसे मनुष्य मुझ अपने अन्तरात्माको इस देहमें ही प्राप्त कर लेता है ।

देवहूतिरुवाच

काचित्त्वय्युचिता भक्तिः(ख्), कीदृशी मम गोचरा ।

यया पदं(न्) ते निर्वाण-मञ्जसान्वाश्नवा अहम् ॥ 28॥

देवहूतिने कहा- भगवन्! आपकी समुचित भक्तिका स्वरूप क्या है ? और मेरी जैसी अबलाओंके लिये कैसी भक्ति ठीक है, जिससे कि मैं सहजमें ही आपके निर्वाणपदको प्राप्त कर सकूँ ?

यो योगो भगवद्वाणो, निर्वाणात्मं(म्)स्त्वयोदितः ।

कीदृशः(ख्) कति चाङ्गानि, यतस्तत्त्वावबोधनम् ॥ 29॥

निर्वाणस्वरूप प्रभो। जिसके द्वारा तत्त्वज्ञान होता है और जो लक्ष्यको बेधनेवाले बाणके समान भगवान्‌की प्राप्ति करानेवाला है | वह आपका कहा हुआ योग कैसा है और उसके कितने अङ्ग हैं ?

तदेतन्मे विजानीहि, यथाहं(म्) मन्दधीर्हरे ।

सुखं(म्) बुद्ध्येय दुर्बोधं(यँ), योषा भवदनुग्रहात् ॥ 30॥

हरे ! यह सब आप मुझे इस प्रकार समझाइये जिससे कि आपकी कृपासे मैं मन्दमति स्त्रीजाति भी इस दुर्बोध विषयको सुगमतासे समझ सकूँ ।

मैत्रेय उवाच

विदित्वार्थं(ङ्) कपिलो मातुरित्थं(ञ्),

जातस्नेहो यत्र तन्वाभिजातः ।

तत्त्वाम्नायं(यँ) यत्प्रवदन्ति साङ्ख्यं(म्)

प्रोवाच वै भक्तिवितानयोगम् ॥ 31॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी। जिसके शरीर से उन्होंने स्वयं जन्म लिया था, उस अपनी माताका ऐसा अभिप्राय जानकर कपिलजीके हृदयमें स्नेह उमड़ आया और उन्होंने प्रकृति आदि तत्त्वोंका

निरूपण करनेवाले शास्त्र का, जिसे सांख्य कहते हैं, उपदेश किया। साथ ही भक्ति-विस्तार एवं योगका भी वर्णन किया ।

श्रीभगवानुवाच

देवानां(ङ्) गुणलिङ्गाना-मानुश्रविककर्मणाम् ।

सत्त्व एवैकमनसो, वृत्तिः(स्) स्वाभाविकी तु या ॥ 32॥

अनिमित्ता भागवती, भक्तिः(स्) सिद्धेर्गरीयसी ।

जरयत्याशु या कोशं(न्), निगीर्णमनलो यथा ॥ 33॥

श्रीभगवान् ने कहा-माता! जिसका चित्त एकमात्र भगवान् में ही लग गया है. ऐसे मनुष्यकी वेदविहित कर्मों में लगी हुई तथा विषयोंका ज्ञान करानेवाली (कर्मेन्द्रिय एवं ज्ञानेन्द्रिय-दोनों प्रकारकी) इन्द्रियोंकी जो सत्त्वमूर्ति श्रीहरिके प्रति स्वाभाविकी प्रवृत्ति है, वही भगवान् की अतुको भक्ति है। यह मुक्तिसे भी बढ़कर है; क्योंकि जठरानल जिस प्रकार खाये हुए अन्नको पचाता है, उसी प्रकार यह भी कर्मसंस्कारोंके भण्डाररूप लिङ्गशरीरको तत्काल भस्म कर देती है ।

नैकात्मतां(म्) मे स्पृहयन्ति केचिन्-

मत्पादसेवाभिरता मदीहाः ।

येऽन्योन्यतो भागवताः(फ्) प्रसज्य

सभाजयन्ते मम पौरुषाणि ॥ 34॥

मेरी चरणसेवामें प्रीति रखनेवाले और मेरी ही प्रसन्नता के लिये समस्त कार्य करनेवाले कितने ही बड़भागी भक्त, जो एक-दूसरेसे मिलकर प्रेमपूर्वक मेरे ही पराक्रमोंकी चर्चा किया करते हैं, मेरे साथ एकीभाव (सायुज्यमोक्ष) की भी इच्छा नहीं करते ।

पश्यन्ति ते मे रुचिराण्यम्ब सन्तः(फ्),

प्रसन्नवक्त्रारुणलोचनानि ।

रूपाणि दिव्यानि वरप्रदानि

साकं(वँ) वाचं(म्) स्पृहणीयां(वँ) वदन्ति ॥ 35॥

मा ! वे साधुजन अरुण नयन एवं मनोहर मुखारविन्दसे युक्त मेरे परम सुन्दर और वरदायक दिव्य रूपोंकी झाँकी करते हैं और उनके साथ सप्रेम सम्भाषण भी करते हैं, जिसके लिये बड़े-बड़े तपस्वी भी लालायित रहते हैं ।

तैर्दर्शनीयावयवैरुदार-

विलासहासेक्षितवामसूक्तैः ।

हृतात्मनो हृतप्राणां(म्)श्च भक्ति-

रनिच्छतो मे गतिमण्वीं(म्) प्रयुङ्क्ते ॥ 36॥

दर्शनीय अङ्ग-प्रत्यंग उदार हास-विलास, मनोहर चितवन और सुमधुर वाणी से युक्त मेरे उन रूपों की माधुरीमें उनका मन और इन्द्रियाँ फँस जाती हैं । ऐसी मेरी भक्ति न चाहनेपर भी उन्हें परमपदकी प्राप्ति करा देती हैं।

अथो विभूतिं(म्) मम मायाविनस्ता-

मैश्वर्यमष्टाङ्गमनुप्रवृत्तम् ।

श्रियं(म्) भागवतीं(वँ) वा स्पृहयन्ति भद्रां(म्)

परस्य मे तेऽश्नुवते तु लोके ॥ 37॥

अविद्याकी निवृत्ति हो जानेपर यद्यपि वे मुझ मायापतिके सत्यादि लोकोंकी भोगसम्पत्ति, भक्तिकी प्रवृत्तिके पश्चात् स्वयं प्राप्त होनेवाली अष्टसिद्धि अथवा वैकुण्ठलोकके भगवदीय ऐश्वर्यकी भी इच्छा नहीं करते, तथापि मेरे धाममें पहुँचनेपर उन्हें ये सब विभूतियाँ स्वयं ही प्राप्त हो जाती हैं ।

न कर्हिचिन्मत्पराः(श्) शान्तरूपे,

नङ्क्ष्यन्ति नो मेऽनिमिषो लेढि हेतिः ।

येषामहं(म्) प्रिय आत्मा सुतश्च,

सखा गुरुः(स्) सुहृदो दैवमिष्टम् ॥ 38॥

जिनका एकमात्र मैं ही प्रिय, आत्मा, पुत्र, मित्र, गुरु, सुहृद् और इष्टदेव हूँ-वे मेरे ही आश्रयमें रहनेवाले भक्तजन शान्तिमय वैकुण्ठधाममें पहुँचकर किसी प्रकार भी इन दिव्य भोगोंसे रहित नहीं होते और न उन्हें मेरा कालचक्र ही ग्रस सकता है ।

इमं(लँ) लोकं(न्) तथैवामु-मात्मानमुभयायिनम् ।

आत्मानमनु ये चेह, ये रायः(फ्) पशवो गृहाः ॥ 39॥

विसृज्य सर्वान्न्यां(म्)श्च, मामेवं(वँ) विश्वतोमुखम् ।

भजन्त्यनन्यया भक्त्या, तान् मृत्योरतिपारये ॥ 40॥

माताजी ! जो लोग इहलोक, परलोक और इन दोनों लोकोंमें साथ जानेवाले वासनामय लिङ्गदेहको तथा शरीरसे सम्बन्ध रखनेवाले जो धन, पशु एवं गृह आदि पदार्थ हैं, उन सबको और अन्यान्य संग्रहोंको भी छोड़कर अनन्य भक्तिसे सब प्रकार मेरा ही भजन करते हैं—उन्हें मैं मृत्युरूप संसारसागरसे पार कर देता हूँ ।

नान्यत्र मद्भगवतः(फ्), प्रधानपुरुषेश्वरात् ।

आत्मनः(स्) सर्वभूतानां(म्), भयं(न्) तीव्रं(न्) निवर्तते ॥ 41॥

मैं साक्षात् भगवान् हूँ, प्रकृति और पुरुषका भी प्रभु हूँ तथा समस्त प्राणियोंका आत्मा हूँ; मेरे सिवा और किसीका आश्रय लेनेसे मृत्युरूप महाभयसे छुटकारा नहीं मिल सकता ।

मद्भयाद्वाति वातोऽयं(म्), सूर्यस्तपति मद्भयात् ।

वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निर्-मृत्युश्चरति मद्भयात् ॥ 42॥

मेरे भयसे यह वायु चलती है, मेरे भयसे सूर्य तपता है, मेरे भयसे इन्द्र वर्षा करता और अग्नि जलाती है तथा मेरे ही भयसे मृत्यु अपने कार्यमें प्रवृत्त होता है ।

ज्ञानवैराग्ययुक्तेन, भक्तियोगेन योगिनः ।

क्षेमाय पादमूलं(म्) मे, प्रविशन्त्यकुतोभयम् ॥ 43॥

योगिजन ज्ञान-वैराग्ययुक्त भक्तियोगके द्वारा शान्ति प्राप्त करनेके लिये मेरे निर्भय चरणकमलोंका आश्रय लेते हैं ।

एतावानेव लोकेऽस्मिन्, पुं(म्)सां(न्) निः(श्)श्रेयसोदयः ।

तीव्रेण भक्तियोगेन, मनो मय्यर्पितं(म्) स्थिरम् ॥ 44॥

संसारमें मनुष्यके लिये सबसे बड़ी कल्याणप्राप्ति यही है कि उसका चित्त तीव्र भक्तियोगके द्वारा मुझमें लगकर स्थिर हो जाय ।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहं(म्)स्यां(म्) सं(म्)हितायां(न्)

तृतीयस्कन्धे कापिलेयोपाख्याने पञ्चविं(म्)शोऽध्यायः ॥

ॐ पूर्णमदः(फ्) पूर्णमिदं(म्)पूर्णात्पूर्णमुदच्यते

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ॐ शान्तिः(श्)शान्तिः(श्)शान्तिः ॥